पूर्वोत्तर भारत की हिंदी कविता का समकालीन परिदृश्य

डॉ. प्रदीप त्रिपाठी
सहायक प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, सिक्किम
(एसोसिएट फेलो, IIAS, शिमला)

शोध- सारांश

भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन एवं सांस्कृतिक विविधता के कारण पूर्वोत्तर भारत की विशिष्ट पहचान है। पूर्वोत्तर भारत के तहत आठ राज्यों को शामिल किया गया है, जिनमें त्रिपुरा, असम, मेघालय, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैंड एवं सिक्किम प्रमुख हैं। पूर्वोत्तर भारत जनजातीय बहुल क्षेत्र है। यहाँ तकरीबन 200 के करीब जनजातियाँ निवास करती हैं। उल्लेखनीय है, लगभग सभी जनजातीय समाज की अपनी भाषा, संस्कृति एवं स्वतंत्र अस्मिता है। भाषा एवं साहित्य की दृष्टि से देखें तो उत्तर पूर्व का कैनवास बहुत ही वृहद् और समृद्ध है। विशेष रूप से हिंदी के परिप्रेक्ष्य में देखें तो पूर्वोत्तर भारत के लगभग सभी राज्यों में हिंदी भाषा ठीक-ठीक बोली और समझी जाती है। पूर्वोत्तर भारत में विगत डेढ़ दशकों से हिंदी भाषा में सृजनात्मकता के जरिए कई रचनाकारों ने अपनी उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज की है। इस क्रम में जुमसी सिराम, एस ललचेनबा मीतै, जोराम यालाम नाबाम, जमुना बीनी, तारो सिन्दिक, कविता कर्मकार, आइनाम इरिंग, रीता मणि वैश्य, तुलसी छेत्री आदि का नाम लिया जा सकता है। बीते एक दशक में कविता लेखन के क्षेत्र में भी इन रचनाकारों ने बहुत ही महत्वपूर्ण हस्तक्षेप किए हैं। विडंबनापूर्ण है कि इतने सार्थक और जरूरी हस्तक्षेप के बावजूद इन रचनाकारों को हिंदी साहित्य की तथाकथित मुख्यधारा में संज्ञान में नहीं लिया गया। प्रस्तुत शोध-पत्र में मूलतः तीन तरह के रचनाकारों को शामिल किया गया है। पहली श्रेणी में ऐसे स्थानीय रचनाकार शामिल हैं, जो मौलिक रूप से हिंदी में लेखन कर रहे हैं। दूसरे वे, जिन्होंने स्थानीय भाषा अथवा अपनी मातृभाषा में कविताएँ लिखी हैं, लेकिन उन रचनाओं का हिंदी भाषा में अनुवाद उपलब्ध है। तीसरी कोटि में वे रचनाकार शामिल हैं, जो मूलतः पूर्वोत्तर भारत से नहीं हैं किंतु, लंबे समय से उत्तर पूर्व में रह रहे हैं।
प्रस्तुत शोध पत्र में निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार किया गया है-

1. पूर्वोत्तर भारत की हिंदी कविता का स्वरूप क्या है?
2. अपनी कविताओं में समकालीन प्रश्नों एवं उत्तर पूर्व की मूल संवेदना को दर्ज कर पाने में यह रचनाकार कहाँ तक सफल हो पाए हैं?
3. समकालीन हिंदी कविता की प्रवृत्तियाँ इन रचनाकारों के यहाँ किस रूप में परिलक्षित होती है?
4. पूर्वोत्तर भारत की हिंदी कविता का समकालीन परिदृश्य क्या है?

5. महत्वपूर्ण रचनात्मक हस्तक्षेप के बावजूद साहित्य की मुख्यधारा (तथाकथित) में इन रचनाकारों को संज्ञान में क्यों नहीं लिया गया?
6. अंतर्वस्तु और शिल्प के स्तर पर इन कविताओं का वैशिष्ट्य क्या है?

बीज-शब्द: पूर्वोत्तर भारत, अस्मिता, संस्कृति, समकालीन, आदिवासी, संरक्षण

शोध-प्रविधि:

प्रस्तुत शोध-पत्र का लेखन मूल पाठ पर आधारित है, इस दृष्टि से यह शोध-पत्र गुणात्मक शोध की श्रेणी में आता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में मुख्य रूप से आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-पद्धतियों का प्रयोग किया गया है।

विषय-विश्लेषण:

धर्म, दर्शन, भाषा, साहित्य एवं विशिष्ट सांस्कृतिक विरासत के कारण पूर्वोत्तर भारत की अनूठी पहचान है। भारत का अभिन्न हिस्सा उत्तर पूर्व जनजातीय समुदायों का समुच्चय है। इन जनजातियों की अपनी स्वतंत्र बोलियाँ और भाषाएँ हैं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से समृद्ध यह क्षेत्र आजादी के 75 वर्ष बाद भी मुख्यधारा से पूरी तरह जुड़ नहीं पाया है। यह बात दीगर है कि विगत दो दशकों में पूर्वोत्तर भारत की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ है, बावजूद इसके लोगों में पूर्वोत्तर भारत के प्रति ठीक-ठीक समझ विकसित नहीं हो पाई है। अखबारी खबरों और मीडिया तंत्रों ने ज्यादातर नकारात्मक खबरों मसलन हिंसा और अलगाव जैसी वृत्तियों को प्रसारित करने का कार्य किया है, दरअसल यह पूर्वोत्तर भारत की असल तस्वीर नहीं है। आज भी समझ और स्वीकार्यता के स्तर पर लोगों का पूर्वोत्तर भारत से तादात्म्य स्थापित नहीं हो पाया है। दृष्टांत के तौर पर युवा कवि धनंजय मल्लिक की कविता 'नॉर्थ ईस्ट के प्रवेश द्वार से' उल्लेखनीय है। वह लिखते हैं-

"भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से आकर रेलगाड़ियां
जब घुसती हैं नॉर्थ ईस्ट की ओर
मैं देखता हूं
प्रवेश द्वार पर खड़े होकर
उसमें दिल्ली होती है
कोलकाता होता है
मुंबई, चेन्नई और भोपाल होते हैं
जब वो लौटती हैं वापस
गाड़ियों में कहीं नहीं होता है

गुवाहाटी, शिलांग, दीमापुर और ईटानगर
जो जैसे आता है
उसी तरह लौटता है
बिना कुछ स्वीकार किए।" (कंचनजंघा, दिसंबर-जनवरी, 2021, पृ. 107)

पूर्वोत्तर भारत को हमेशा से अलग-थलग करके देखा जाता रहा है। स्वीकार्यता के स्तर पर आज भी इस क्षेत्र के संदर्भ में लोगों की धारणा स्पष्ट नहीं है, यह बहुत ही दुखद है। सांस्कृतिक विविधता और सामुदायिक चेतना ही पूर्वोत्तर भारत की मूल पहचान है। इसे करीब से देखे, समझे और महसूस किए बिना पूर्वोत्तर भारत को समझा नहीं जा सकता। इस बीच पूर्वोत्तर भारत के कुछ ऐसे भी रचनाकार सामने आए, जिन्हें हिंदी कविता के लिए युवा साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्रदान किया गया। यह दीगर बात है कि पूर्वोत्तर भारत में हिंदी कविता-लेखन कार्य कम हुआ, लेकिन उपलब्ध रचनाशीलता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह रचनाएँ संख्या और आकार में भले ही कम हैं, लेकिन इनका घनत्व बहुत ही व्यापक और सघन है। हिंदी कविता में पूर्वोत्तर भारत के रचनाकारों की सशक्त उपस्थिति के बावजूद इन्हें संज्ञान में न लिया जाना, चिंताजनक है।

विगत डेढ़ दशकों में पूर्वोत्तर भारत में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार अधिक हुआ है। उल्लेखनीय है कि पूर्वोत्तर भारत के स्थानीय रचनाकारों द्वारा हिंदी भाषा में साहित्य लेखन अभी अपने आरंभिक दौर में है। इस अर्थ में पूर्वोत्तर की हिंदी कविता, युवा कविता है। 'स्व' की अस्मिता पूर्वोत्तर भारत के समाज की मूल समस्या है। यह विडंबना ही है कि पूर्वोत्तर भारत के लोगों को आज भी अपने भारतीय होने का प्रमाण देना पड़ता है। भारतीय मूल के होने के बावजूद रूप और संरचना के स्तर पर पूर्वोत्तर भारत के लोगों को हमेशा संदिग्ध नजरिये से देखा जाता है, साथ ही उनके लिए अशोभनीय एवं व्यंग्यात्मक टिप्पणियां भी की जाती हैं। इस टीस को अरुणाचल प्रदेश के युवा कवि तारो सिन्दिक की कविता 'मुझे ढूंढ़ों' में बखूबी महसूस किया जा सकता है-

"मुझे ढूंढ़ों
उन चेहरों में
जिन्हें रास नहीं आती
हमारी मंगोलियन छाप
कुछ सह भारतीय
इन चेहरों में तलाशते हैं
चीन, जापान और कोरिया के नक़्शे

मुझे ढूंढ़ों तुम
जुलूसों में नहीं, धरनों में नहीं

भाषणों में नहीं, मीडिया में नहीं

अपनी आत्माओं में।" (तारो सिन्दिक, फिर आना तुम, पृ. 43-44)

तारो सिन्दिक की इस कविता में एक गहरा अर्थ-बोध विन्यस्त है। यह कविता पूर्वोत्तर भारत की अस्मिता और उनकी आंतरिक पीड़ा को बहुत ही जीवंत रूप में उद्घाटित करती है। अस्मिता और अस्तित्व का प्रश्न ही पूर्वोत्तर की कविता की मूल चिंता है। ध्यान देने योग्य है, पहचान का यह संकट केवल रूप और रंगत के स्तर पर ही नहीं, बल्कि भाषा के स्तर पर भी है। सिक्किम राज्य की संपर्क भाषा नेपाली है, आमतौर पर यह संदर्भ लोगों के लिए आश्चर्य का विषय हो जाता है। एक प्रकार से यह हमारी अज्ञानता का विषय है। इस तथ्य को हमें गंभीरता से समझने की जरूरत है कि वर्ष 1992 में 'नेपाली' को भारतीय भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की गई। इस दृष्टि से सिक्किम प्रांत का नेपाली समाज मूलतः भारतीय है। इन रचनाकारों द्वारा लिखित साहित्य को 'भारतीय नेपाली साहित्य' के नाम से अभिहीत किया गया है। ध्यान देने योग्य है कि संवैधानिक मान्यता मिलने से पूर्व ही वर्ष 1977 (इंद्रबहादुर राई- नेपाली उपन्यास का आधारहरू) से नेपाली साहित्य लेखन हेतु साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलना आरंभ हो गया था। भारतीय परिप्रेक्ष्य में नेपाली भाषा का अपना स्वतंत्र और समृद्ध साहित्येतिहास है। महत्वपूर्ण बात यह कि नेपाली भाषा में लिखी गई तमाम कविताओं का हिंदी-अनुवाद कार्य हुआ है, इन कविताओं से गुजरते हुए हम नेपाली समाज एवं इस अंचल की मूल समस्याओं को समझ सकते हैं। अपने समय और समाज की चिंताएं इनकी कविताओं में मुखर रूप से दर्ज हुई हैं। राजेन्द्र भण्डारी की कविता 'हत्या की कला' के जरिये समाज की भयावहता एवं मनोवृत्ति को समझा जा सकता है। वे लिखते हैं-

"अपराध के लिए

अब रात का इंतजार नहीं करना पड़ता है

एकांत का भी नहीं।

हत्यारों का दावा है

हत्या एक कला है।

इसे कला का दर्जा दिया जाना चाहिए।"

(छोटी-छोटी खुशियाँ, अनुवादक: सुवास दीपक, 2021, पृ. 31)

समाज में व्याप्त डर, हिंसा और असुरक्षा के माहौल को राजेन्द्र भंडारी की यह कविता बहुत ही नजदीक से तसदीक करती है। निश्चित रूप से इस कविता का कैनवास किसी ख़ास क्षेत्र विशेष तक सीमित न होकर बहुत ही वृहत है। समाज में हो रही जातीय हिंसा, अन्याय एवं शोषण जैसी अराजकता के संदर्भ में देखें तो यह कविता सत्ता एवं व्यवस्था-विडंबना पर करारा व्यंग्य करती है।

आज भी आदिवासी समाज अस्मिता एवं अस्तित्व के संकट से लगातार जूझ रहा है, यह समस्या कहीं न कहीं भारतीय संविधान को भी कटघरे में खड़ा करती है। जिसे पहले हाशिए अथवा परिधि का साहित्य कहकर नजरअंदाज किया जाता रहा, दरअसल आज वही परिधि की रचनाशीलता साहित्य और विमर्श का

केंद्रीय बिंदु है। पूर्वोत्तर की कविता की विशेषता यह है कि उसके केंद्र में केवल उत्तर पूर्व के समाज की चिंता न होकर समग्र भारत-बोध है। दृष्टांत के तौर पर नागालैंड की चर्चित कवयित्री तेमसुला आओ की कविता उल्लेखनीय है-

"अगर ज़ख़्म बोल सकता
तो किस भाषा का करता प्रयोग
किस न्याय की करता तलाश
किसे देता दोष
अत्याचारी को
उसकी ताकत के लिए
या पीड़ित को उसकी कमजोरी के लिए।"

(मूल रचना- तेमसुला आओ, अनुवाद: श्रुति एवं माधवेंन्द्र, 2012 पृ. 84)

इस कविता के मूल में केवल स्त्री-जीवन, शोषण और संघर्ष ही नहीं, बल्कि अन्याय के विरूद्ध उन सभी आवाजों की गूँज हैं, जिन्हें कभी सुना ही नहीं गया। पुरुषों के बरक्स स्त्री जीवन का मनोविज्ञान बिल्कुल अलग है, इसी पृष्ठभूमि को अरुणाचल प्रदेश की कवयित्री ममंग दई अपनी एक कविता में दर्ज करते हुए लिखती हैं-

"कभी-कभी मैं सर झुकाकर
सिसकती हूँ।
कभी-कभी मैं चेहरा छुपाकर
सिसकती हूँ।
कभी-कभी मैं मुस्कुराती हूँ
फिर भी सिसकती हूँ।
पर आपको, यह कला नहीं आती।"

(अनुवाद: आयुषि नारायण एवं डॉ. भीम सिंह, कंचनजंघा, जुलाई-दिसंबर,2020, पृ- 270)

ममंग दई की कविता के चित्तवृत्त में पुरुषवादी सोच की कटु आलोचना है। हमारे समाज में आज भी स्त्री का जीवन 'स्व' के अन्वेषण से शुरू होकर 'स्व' को जानने तक में ही सिमट जाता है। इसी दर्द को असम की युवा कवयित्री तुलसी छेत्री अलग ढंग से बयां करती हैं-

"चालीस के पार औरतों का जन्म होता है
उसके पहले वे समाज होती हैं।" (रजस्वला शहर, तुलसी, मार्च, 2023)

पूर्वोत्तर भारत आदिवासी बहुल समाज है। प्रकृति पूजक समाज के रूप में इनकी विशिष्ट पहचान है। आमतौर पर हमारे जनमानस में प्रकृति और मनुष्य को दो अलग-अलग सत्ता के रूप में देखा जाता रहा है। जाहिर है, प्रकृति और मनुष्य के बीच की इन्हीं दूरियों के कारण आज हमारी पूरी सभ्यता संकट के दौर से

गुजर रही है। आदिवासी समाज का प्रकृति से नाभिनाल संबंध है। प्रकृति ही उनके लिए ईश्वर है, वही सर्वस्व है। आदिवासी समाज ने हमेशा से प्रकृति और मनुष्य को एक अभिन्न सत्ता के रूप में स्वीकार किया है। उनकी यह मान्यता ही आदिवासी दर्शन की मूल अवधारणा है। मानव सभ्यता पर गहराता संकट मनुष्यता के लिए सबसे बड़ा खतरा है। इस संकट को आदिवासी रचनाकार जसिंता केरकेट्टा बहुत ही नजदीक से महसूस करती हैं। वे लिखती हैं-

"नदी की लाश के ऊपर
आदमी की लाश डाल देने से
किसी के अपराध पानी में घुल नहीं जाते
वे सब पानी में तैरते रहते हैं
जैसे नदी के साथ
आदमी की लाशें तैर रही हैं
मरे हुए पानी में अब भी

एक दिन जब सारी नदियाँ
मर जायेंगी ऑक्सीजन की कमी से
तब मरी हुई नदियों में तैरती मिलेंगी
सभ्यताओं की लाशें भी

नदियाँ ही जानती हैं
उनके मरने के बाद आती है
सभ्यताओं के मरने की बारी।"
(ईश्वर और बाजार, जसिंता केरकेट्टा, पृ. 36)

जसिंता केरकट्टा की यह कविता मानव-सभ्यता पर गहराते संकट की ओर संकेत तो है ही साथ ही प्रकृति को बचाए रखने के हेतु गंभीर चेतावनी भी है। सभ्यता पर मंडराते संकटों की ओर संकेत अरुणाचल प्रदेश की युवा रचनाकार आईनाम इरिंग दूसरी तरह से करती हैं। अपनी कविता 'उम्मीद' में वे लिखती हैं-

"यह डर मृत्यु का डर नहीं है
यह डर मृत्यु के बाद भी
अनवरत बढ़ते रहने वाली ताकतों का है।" (मीत, आईनाम इरिंग, पृ. 36)

आदिवासी समाज के लिए विकास की परिभाषा बिल्कुल भिन्न है। उनकी पक्षधरता ऐसे विकास के मॉडल की हिमायती नहीं है, जिसमें उनकी परंपरा और संस्कृति पर किसी भी तरह का खतरा हो। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंध 'परंपरा और आधुनिकता' में बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात की ओर संकेत किया है। वे लिखते हैं- "बुद्धिमान आदमी एक पैर से खड़ा रहता है, दूसरे से चलता है। यह केवल व्यक्ति सत्य नहीं है, सामाजिक सदंर्भ में भी यही सत्य है। खड़ा पैर परंपरा है और चलता पैर आधुनिकता। दोनों का पारस्परिक

संबंध खोजना बहुत कठिन नहीं है। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती।" (परंपरा और आधुनिकता, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 17) पूर्वोत्तर का समाज परंपरा और आधुनिकता के इसी सहभाव और विकास मॉडल का समर्थन करता है।

संस्कृति और सभ्यता के क्षरण के साथ पूर्वोत्तर की कई भाषाएँ लुप्त हो रही हैं, अथवा लुप्त होने के कगार पर हैं। विगत कुछ वर्ष पूर्व भाषा सर्वेक्षण संबंधी अनुसंधान में सिक्किम की माजी भाषा के लुप्त होने की चर्चा सामने आई है। ठक बहादुर माजी अपनी भाषा (माजी) को बोलने वाले अंतिम व्यक्ति थे। ठक बहादुर की अनुपस्थिति एक व्यक्ति के तौर पर नहीं अपितु एक भाषा की पूरी संस्कृति और सभ्यता के ख़त्म होने के रूप में ली जानी चाहिए। डेविड क्रिस्टल ने भी अपनी पुस्तक 'लैंग्वेज डेथ' में 'एक शब्द' की मृत्यु को उसकी भाषा एवं संस्कृति की मृत्यु के संदर्भ में देखा है। ध्यान देने योग्य है, लुप्त हो रही रही भाषाओं का प्रश्न पूर्वोत्तर भारत के समाज के लिए बड़ा संकट है। इसके संरक्षण और संवर्धन संबंधी कई चुनौतियाँ हैं, दुर्भाग्य की बात है कि इतनी गंभीर समस्या पर पूर्वोत्तर भारत की हिंदी कविता में कोई ख़ास सुगबुगाहट दिखाई नहीं देती है।

पूर्वोत्तर भारत की अधिकांश आदिवासी भाषाओं के पास अपनी कोई लिपि नहीं है। अरुणाचल प्रदेश के विशेष संदर्भ में देखें तो खाम्ती और मोम्पा समाज को छोड़कर किसी भी भाषा की अपनी लिपि नहीं है। निश्चित रूप से लिपियों की समस्या-संबंधी प्रश्न एक गंभीर विमर्श की माँग करता है। हालाँकि इस विषय पर दशकों से सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों द्वारा लिपियों की चिंता को लेकर कई संगोष्ठियाँ एवं कार्यशालाएं आयोजित की जा चुकी हैं, लेकिन इसका कोई परिणाम अभी तक सामने नहीं आ पाया है। हिंदी भाषा और साहित्य का जनमानस लगातार आदिवासी समाज पर उनकी स्थानीय भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि को स्वीकार करने का दबाव बनाता रहा है, जबकि वे इस बात से परिचित हैं कि देवनागरी लिपि में आदिवासी भाषाओं के कुछ प्रतीक चिह्न और ध्वनियां नहीं हैं। इस दृष्टि से सबसे पहले जरूरी यह है कि आदिवासी भाषाओं में प्रयुक्त ध्वनियों व चिन्हों को देवनागरी में यथासंभव शामिल किया जाय। बिना इस प्रयास के देवनागरी लिपि को यहाँ के समाज पर थोपे जाने की साजिश न्यायसंगत नहीं है। वस्तुस्थिति यह है कि लिपि के अभाव में यहाँ के आदिवासी समाज ने रोमन को ही अपनी लिपि स्वीकार किया है। आवश्यकतानुसार इसमें कुछ प्रतीक चिन्हों को भी शामिल किया है। अरुणाचल प्रदेश तुनुंग ताबिंग ने अपने कविता संग्रह की भूमिका (अपनी बात) के माध्यम से इस विषय गंभीर सवाल उठाए हैं। वह अपने कविता संग्रह 'गोमpi गोमुk' शीर्षक के संदर्भ में लिखती हैं- "प्रस्तुत कविता संग्रह के लिए 'गोमpi गोमुk' नाम मैंने इसलिए रखा ताकि अपने मंतव्य की ओर पाठकगण का ध्यान आकृष्ट कर पाऊँ। 'गोमpi' अर्थात 'शब्द' 'गोमुk' यानी की 'शब्द की ध्वनि'। यहाँ देवनागरी में रोमन (आवश्यकतानुसार मॉडिफाइड किया हुआ) जोड़कर लिखने का कारण भी यही है कि 'गोम' में 'pi' के लिए देवनागरी में कोई भी मात्रा उपलब्ध ही नहीं है। जबकि 'गोमपी' लिखने पर इस शब्द का अर्थ परिवर्तन हो जाता है। वर्तमान में तानी भाषाओं को लिपिबद्ध करने का प्रयास जारी है, इस दिशा में काफी सफलता भी मिली है।" (गोमpi गोमुk, तुनुंग ताबिंग, पृ. vi)

तुनुंग ताबिंग ने अपनी कविताओं में लिपियों संबंधी समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार किए हैं। मिसाल के तौर पर उनकी कविता 'ध्वनि चिह्न' उल्लेखनीय है-

"आपने जो बोला
हमने सुना,
आपने जो सिखाया
हमने सीखा,
आपने जो लिखने को कहा
हमने लिखा,
पर
हम जो बोलते हैं
क्या आपने कभी सुना?
या फिर
सुनना चाहेंगे।" (गोमpi गोमुk, तुनुंग ताबिंग, पृ. 47)

आदिवासी भाषा एवं जीवन-शैली का अपना अलग ही सौंदर्यबोध है। इस संदर्भ में कुडुख परंपरा में प्रचलित एक टिपण्णी बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है- "चलना ही नृत्य है, बोलना ही गीत है और गीतों का संग्रह दुःख को काटता है।" आदिवासी जीवन दर्शन को यदि ठीक ढंग से समझना है तो हमें उनके लोक गीतों, लोककथाओं, मिथकों, लोक-विश्वासों को गहराई से समझना जरूरी है।

पूर्वोत्तर भारत के रचनाकारों से हमारा साहित्यिक जनमानस भले ही बहुत कम परिचित है किंतु इन कवियों की चिंता का फलक वैश्विक है। युद्ध और अमानवीयता किसी भी समाज के लिए भयावह है। इस तरह की विभीषिका से उपजी अमानवीयता को पूर्वोत्तर भारत के कवियों ने अपनी रचनाओं में बहुत ही बारीक के साथ उद्घाटित किया है। अरुणाचल प्रदेश की रचनाकार जोराम यालाम नाबाम अपनी कविता 'बादल किसी रोज' में लिखती हैं-

"युद्ध अपनों से ही हों
तो बेहतर है मौन।" (कंचनजंघा पत्रिका, जनवरी-दिसंबर- 2022)

युद्ध के संदर्भ पर ही असम की कवयित्री कविता कर्मकार लिखती हैं कि-

"युद्धोन्माद कभी युद्ध में नहीं जाते
बस वे मृत्यु पर हर्षोल्लास करते, ठहाके लगाते हैं
असल युद्ध तो वे लड़ते हैं
जिन्हें आस रहती है युद्ध कभी न हो।
…….x……x……x……"
बेचैनी और शंका के भंवर में बस डूबते हैं, डूबते चले जाते हैं

युद्ध उनका होता है।....

युद्ध की नियति हर पक्ष के लिए एक ही होती है।" (कंचनजंघा पत्रिका, जनवरी-दिसंबर- 2021)

कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कह देना, कविता की ताकत होती है। सिक्किम के चर्चित कवि भीम ठटाल अपनी कविता में एक जगह समाज की अमानुषिकता और बर्बरता को दर्ज करते हुए लिखते हैं-

"खौलना चाहिए था जिस खून को
अब वह ठंडा पड़ गया है
कितना भयावह समय है यह
जब रक्त रंजित जर्जर युद्ध से आक्रांत रक्तिम शहर में
रक्त न मिलने से एक बच्चा मर जाता है
और मैं देश की राजधानी के बड़े अस्पताल में
एक एस. एम. एस. नहीं भेज सकता हूँ।" (कंचनजंघा पत्रिका, जनवरी-दिसंबर- 2021, पृ.100)

युद्ध की भाव-भूमि पर लिखी गई इस कविता के कई शेड्स हैं। समाज में व्याप्त क्रूरता और विध्वंस के बीच मनुष्य असामाजिक और संवेदनहीन होता जा रहा है, भीम ठटाल की यह कविता इस बात की ओर संकेत करती है। युद्ध का परिणाम हमेशा भयावह ही होता है। अरुणाचल प्रदेश की रचनाकार आईनाम इरिंग ने अपनी कविता में युद्ध की विभीषिका का बहुत ही जीवंत चित्रण किया है-

"मैं शिकायतों की लंबी-लंबी लाइन लगा रहा था
और दुनिया के एक कोने में युद्ध छिड़ गया है
तिनका-तिनका जोड़कर बनाए गए मकान
बम धमाकों से उजड़ रहे हैं।
एक पिता अपने परिवार को सहेजने का अंतिम प्रयास कर रहा है।"

(मीत, आईनाम इरिंग, 2023, पृ. 76)

मनुष्यता की हिफ़ाजत करना कविता का पहला और अंतिम उद्देश्य है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने निबंध 'कविता क्या है' में इस बात की ओर संकेत किया है कि "कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भावभूमि पर ले जाती है।" पूर्वोत्तर की कविताएँ लोक की इसी भावभूमि पर मनुष्यता को बचाने के लिए निरंतर जद्दोजहद करती हैं। पूर्वोत्तर की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनितिक स्थितियों को समझने के लिए इन कविताओं को मुकम्मल दस्तावेज के रूप में देखा जा सकता है। हिंदी के प्रतिष्ठित कवि कुंवर नारायण अपनी एक कविता में लिखते हैं-

"कविता वक्तव्य नहीं गवाह है
कभी हमारे सामने

कभी हमसे पहले

कभी हमारे बाद…" (प्रतिनिधि कविताएँ, 2000, पृ. 12)

पूर्वोत्तर भारत की कविताओं के संदर्भ में कुंवर नारायण की कविता का यह अंश बहुत ही महत्वपूर्ण है। हाल ही में मणिपुर राज्य में घटित हिंसा एवं महिलाओं के प्रति क्रूरतम व्यवहार जैसी घटना से हम सब बखूबी परिचित हैं। इस मुद्दे को लेकर भारतीय जनमानस लगभग हर तरह से असंवेदनशील रहा है। साहित्य की मुख्यधारा में इस मुद्दे को लेकर चर्चा नहीं के बराबर दिखती है। उल्लेखनीय है, पूर्वोत्तर के स्थानीय रचनाकारों द्वारा इस वीभत्स घटना को बहुत ही गंभीरता के साथ संज्ञान में लिया गया। असमीया कवि नीलिम कुमार की कुछ कविताओं को दृष्टांत के तौर पर देखा जा सकता है-

"उन्मत्त औरतों का एक झुण्ड

घसीट लाया दो औरतों को

और एक घर में बंद कर दिया

औरतों ने पुरुषों को बुलाया

आओ, इन दोनों का बलात्कार करो

इनका बलात्कार कर पाने पर ही

तुम लोग पुरुष कहलाओगे।" (कंचनजंघा पत्रिका, जनवरी-जून- 2023, पृ. 93)

इसी कविता के दूसरे भाग में वे लिखते हैं-

"छाती से अपने बच्चे को चिपकाए

भागती हुई औरत ने

पीछे दौड़ते हुए आदमी से कहा-

मेरे कपड़े मत खोलना

मेरे गुप्तांग में आग है

जलकर मर जाओगे।" (कंचनजंघा पत्रिका, जनवरी-जून- 2023, पृ. 93)

दरअसल हिंसा, क्रूरता और बर्बरता जब अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर दे तो इस तरह के प्रतिरोध का आना स्वाभाविक है। प्रतिरोध ही इस कविता की ताकत है। एक प्रकार से देखें तो यह कविता सत्ता-व्यवस्था एवं सामजिक विडंबना को खुले तौर पर चुनौती देते हुए समय और समाज से सीधे मुठभेड़ करती हुई नजर आती है। पुरुषों द्वारा स्त्री-जीवन और उसके मनोविज्ञान को समझा ही नहीं गया। इस संदर्भ को पूरी व्यापकता के साथ निर्मला पुतुल अपनी एक कविता में व्यक्त करते हुए लिखती हैं-

"सपनों में भागती

एक स्त्री का पीछा करते

कभी देखा है तुमने उसे

रिश्तों के कुरुक्षेत्र में

अपने...आपसे लड़ते।

तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के
मन की गाँठे खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने
उसके भीतर का खौलता इतिहास

पढ़ा है कभी
उसकी चुप्पी की दहलीज़ पर बैठ
शब्दों की प्रतीक्षा में उसके चेहरे को।

उसके अंदर वंशबीज बोते
क्या तुमने कभी महसूसा है
उसकी फैलती जड़ों को अपने भीतर।

क्या तुम जानते हो
एक स्त्री के समस्त रिश्ते का व्याकरण
बता सकते हो तुम
एक स्त्री को स्त्री-दृष्टि से देखते
उसके स्त्रीत्व की परिभाषा

अगर नहीं
तो फिर जानते क्या हो तुम
रसोई और बिस्तर के गणित से परे
एक स्त्री के बारे में....।" (निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ. 20)

पूर्वोत्तर भारत के कई आदिवासी समाज मातृवंशीय हैं। दृष्टांत के लिए यहाँ मेघालय की खासी जनजाति की चर्चा महत्त्वपूर्ण है। इस समाज की खूबसूरती यह है कि इन परिवारों में महिलाएं निर्णायक भूमिका में रहती हैं। जेंडरगत स्तर पर देखें तो यह समाज हमेशा से समता और समानता के भाव में अपना दृढ़ विश्वास रखता है। इस जनजातियों में विवाह के उपरांत पुरुष को हमेशा के लड़की के घर पर ही रहना होता है। लोक भाषा में कहें तो विवाह के उपरांत यहाँ लड़की के साथ लड़कों की 'विदाई' हो जाती है। संतान की वंश परंपरा 'मां' के वंश के आधार पर ही चिन्हित की जाती है। संतानों का उपनाम/सरनेम भी मां के सरनेम के आधार पर ही निर्धारित होता है। रोचक बात यह है कि खासी समुदाय में मां के नाम के अंतिम अक्षर से ही संतानों के नाम का आरंभ होता है। इस समाज में संपत्ति के बंटवारे में महिलाओं का समान अधिकार होता है। मातृवंशीय समाज की यह दुर्लभ परंपरा हमारे समाज में लगभग नहीं के बराबर दिखाई देती है। उत्तर पूर्व की कविता का

यह कमजोर पक्ष कि इस तरह की दुर्लभ लोक-परंपरा की मूल संवेदना अभी तक इन कविताओं में नहीं आ पाई है।

पूर्वोत्तर भारत की स्त्री कविता के मूल में पितृसत्तात्मक समाज की कड़ी आलोचना देखने को मिलती है। सामाजिक जड़ता के खिलाफ़ पूर्वोत्तर की कविताएँ हमेशा उनके प्रतिपक्ष में खड़ी नजर आती हैं। दृष्टांत के तौर पर रूपा तामाङ की कविता 'खेप्पा सुङ' देखी जा सकती है-

"आपके घर खेपासुङ के मुर्गे ने पानी नहीं छिड़का
इसलिए आपने आतंक मचाया
संदेह किया
बहन, बेटी, बहू और पत्नी पर
और अपवित्र होने का आरोप लगाया।
सहनशील महिलाओं ने आपकी बात सुनी
आपके आतंक को और अधिक समर्थन मिला...
थेवा ज्योजो !
पहले मुझे बताओ अपवित्रता क्या है?
आपके खेपा सुंङ के मुर्गे का पानी नहीं छिड़कना
और केवल गृहणियों और महिलाओं का
अपवित्र होना।" (खेपासुङ- पिता देवता, थेवा- जेष्ठ, ज्योजो- भाई)
(कंचनजंघा पत्रिका, जनवरी-जून- 2023, पृ. 93)

रूपा तामाङ की यह कविता संकेत करती है कि हमारे समाज में पितृसत्ता की जड़ें कितनी गहरी हैं, जिनका संबंध परंपरा और इतिहास से है। अपवित्रता या शुचिता का प्रश्न स्त्रियों के लिए हमेशा से रहा है, यह सवाल पुरुषों के लिए क्यों नहीं? यह कविता इस कुंठित-जड़ता से सीधे मुठभेड़ करती है।

सामजिक विसंगतियों के साथ-साथ स्त्री असुरक्षा के सवाल पूर्वोत्तर भारत की कविताओं में प्रमुखता से दर्ज हुए हैं। असम की कवयित्री तुलसी की कविताएं स्त्री जीवन के ऐसे सवालों को सामने लाती हैं, जो लगभग अनकहे और अनसुने रह जाते हैं। वे अपनी एक कविता 'मूँछ और चुंबन' में लिखती हैं-

"जिसने अभी घूँघट को उठा
मेरा चेहरा हाथों में ले चूमा है
मैं चाहती हूँ इस आदमी की मूंछे कभी न उगें।
मूँछों का चूमना
याद दिलाता है
ऑटो वाले मामू की मूँछें
स्कूल के चौकीदार काका की मूँछे

दीदी के प्रेमी की मूँछे....

... x.....x… x …

छेदती गई बचपन से जवानी तक की

बलिष्ठ मूँछों वाली सारी उपमाएँ।"

(तुलसी छेत्री, कंचनजंघा पत्रिका, जनवरी-जून, 2023, पृ. 81)

तुलसी की कविता की यह पंक्तियाँ स्त्री जीवन के ऐसे सवालों को उकेरती हैं, जो अभिव्यक्ति से पहले ही दमित हो जाती हैं। तुलसी छेत्री की यह कविता सन्नाटे के बीच सहमा हुआ ऐसा स्वर है, जिसकी गूँज बहुत दूर तक जाती है।

कविता की संरचना में उसके शिल्प-वितान की भूमिका बहुत ही अहम होती है। शिल्प की नूतनता से विषयवस्तु की अर्थवत्ता को विस्तार मिलता है। पूर्वोत्तर की हिंदी कविता अपनी बुनावट, प्रयोग एवं नयेपन के कारण कई दृष्टियों अलग है। मिसाल के तौर पर भारतीय नेपाली कविता के वरिष्ठ कवि राजेन्द्र भण्डारी की कविता 'बेरोजगार युवा का आइडेंन्टिटी' उल्लेखनीय है-

"**नाम**: धनबहादुर

पिता का नाम: रन बहादुर

मां का नाम: बिर्ख माया

पता: जहाँ से कंचनजंघा दिखती है।

कुछ दूर चलने पर कछार दिखता है।

जहाँ पहाड़ी नदियाँ लोकगीत गाती हैं।

जहाँ लोग शोक गीत गुनगुनाते हैं।

डाक-संपर्क: कोई इलाइचीबारी, धानबारी, चायबारी,

गौचर, परती, बाँसबारी।

आयु: भुजाओं में ताकत है जितनी

आँखों में सपने हैं जितने।

इधर चपकाना होगा पासपोर्ट साइज़ का फोटो।

फोटो ऐसा हो

दोनों कान स्पष्ट दिखने चाहिए

एक बाजार का भाषण सुनने के लिए

और दूसरा घर के कचकच को सुनने के लिए।

फोटो में पैर नहीं दिखने चाहिए

क्योंकि तुम्हें कहीं पहुँचना नहीं है।" (छोटी-छोटी खुशियाँ, अनु.: सुवास दीपक, 2021, पृ. 172)

राजेन्द्र भंडारी की यह कविता अंतर्वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। छोटी सी कविता की भावभूमि में हमारे समय के कई जरूरी सवाल नज़र आते हैं। बेरोजगारी की समस्या को उद्घाटित करने के साथ-साथ यह कविता पूर्वोत्तर भारत की सांस्कृतिक अस्मिता से भी हमारा परिचय करवाती है।

पूर्वोत्तर का आदिवासी समाज बहुत सहज और सहृदय है। भाषिक दृष्टि से देखें तो सहजता ही इनकी कविता की मूल प्रकृति है। जमुना बीनी की कविता की यह पंक्तियाँ इस संदर्भ पुष्टि करती हुई नजर आती हैं-

"इस भाषा ने कभी कुतर्क नहीं जाना
और सभ्यों की भाषा
तर्कजाल से भरी है।" (जमुना बीनी, जब आदिवासी गाता है, 2018, पृ. 22)

पूर्वोत्तर भारत सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत ही समृद्ध है और यही इसकी खूबसूरती है। एनीमल लवर के नाम पर पूंजीपतियों द्वारा यहाँ के संसाधनों का दोहन एवं सांस्कृतिक विरासत के दमन की लगातार कोशिश की जा रही है। इस संदर्भ को असम के कवि दिनकर कुमार ने अपनी कविता में बखूबी उठाने की कोशिश की है। वे लिखते हैं-

"जामनगर जाते समय असम के हाथी ने कहा
मुझे नहीं जाना है अपना बसा बसाया घर छोड़कर
अपनी हरियाली को छोड़कर चाय बागान और
नीली पहाड़ियों की संगत छोड़कर
ब्रह्मपुत्र की घाटी की सुषमा को छोडकर
मुझे नहीं जाना है हजारों कोस दूर
पराई दुनिया में पराए मौसम में
मुझे किसी अंबानी का मनोरंजन नहीं करना है।" (दिनकर कुमार, 2024)

सांस्कृतिक संरक्षण दिनकर कुमार की कविता की मूल चिंता है। दिनकर हमारे समय के ऐसे कवियों में से हैं, जो अपनी कविताओं में किसी भी तरह का समझौता नहीं करते। बिना किसी लाग-लपेट के अपनी बात को कविता को पुरजोर तरीके से जाहिर करना, उनकी कविता की महत्वपूर्ण विशेषता है।

पूर्वोत्तर भारत की कविता का कैनवास बहुत ही बृहद है। प्रकृति और सांस्कृतिक क्षरण की चिंता पूर्वोत्तर की कविता ने मुखर रूप से उठाया है। मनप्रसाद सुब्बा, आईनाम इरिंग, तारो सिन्दिक, जमुना बीनी, राजेन्द्र भंडारी, रोज़ी कामेई एवं तुनुंग ताबिंग की कई कविताओं में इसके दृष्टांत प्रमुखता से देखे जा सकते हैं। पहाड़ी जीवन पर मंडराते संकट के संदर्भ में आईनाम इरिंग लिखती हैं कि-

"हर एक पत्ता मुट्ठी
हर एक डाल तलवार
हर एक चट्टान फौलादी बन
और खूंखार होना चाहिये था

ताकि हवाओं की आजादी बनी रहे
चिड़ियों की आवाजें गूंजती रहें
झरने गिरते और बहते रहें
ताकि मनुष्य जाति के अंदर
पहाड़ी दुनिया को न उजाड़ने का खौफ़ बना रहे।" (मीत, आईनाम इरिंग, पृ. 56)

संस्कृति के क्षरण पर केंद्रित तुनुंग ताबिंग ने भी कई कविताएँ लिखी हैं। 'दिशाहीन' का एक अंश द्रष्टव्य है-

"पता नहीं हमारी संस्कृति
किस दिशा में जा रही है!
स्थानीय रंग में
भंग होती जा रही है
सुना था मिलावट
खाद्य वस्तुओं में की जा रही है
मिलावट तो 'धर्म' और संस्कृति में घुलती जा रही है।"

(गोमpi गोमुk, तुनुंग ताबिंग, पृ. 84)

समय सापेक्ष सामाजिक स्तर पर बदलाव के साथ काव्य-चेतना में भी तब्दीली आई है। पूर्वोत्तर के समाज में भी लिंग-भेद, पितृसत्ता, शोषण की कई ऐसी लकीरें हैं, जिसका भान उसकी भीतरी तह में जाने के बाद होता है। विगत एक दशक में हिंदी कविता में पूर्वोत्तर भारत का स्त्री स्वर बहुत ही मुखर रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इसका एक उदाहारण आईनाम इरिंग की कविता 'आजाद लड़की' के माध्यम से देखा जा सकता है-

"लड़कियां पतंग होती हैं
ऐसा सबको लगता है
जो उड़ती तो हैं
पर डोर के साथ।
पर लड़कियां पतंग नहीं होती
जिस क्षण वह डोर तोड़ देंगी
तुम विस्मित न हो जाना
वह बहुत दूर उड़ सकती हैं।" (मीत, आईनाम इरिंग, पृ. 43)

निष्कर्ष एवं सुझाव:

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि पूर्वोत्तर की हिंदी कविता का केंद्रीय स्वर मूलतः अस्मिता और अस्तित्व के प्रश्नों के इर्द-गिर्द घूमता है। स्त्री-जीवन संघर्ष, लुप्त हो रही भाषा, असमानता एवं प्रकृति के प्रति चिंता इन कविताओं का मूल स्वर है। मनुष्यता को बचाए रखने की कोशिश इन कविताओं की केंद्रीय चिंता है। पूर्वोत्तर भारत का लोकवृत्त अत्यंत व्यापक और समृद्ध है। उत्तर पूर्व की कविताओं के पूरे वितान को देखें तो यहाँ की लोक-विषयक धारणाएं, लोक-विश्वास एवं लोक-परंपरा का मूल स्वरूप ठीक ढंग से उद्घाटित नहीं हो पाया है। आलोचनात्मक ढंग से यदि हम पूर्वोत्तर भारत की हिंदी कविता- यात्रा को देखें तो उत्तर पूर्व की मुकम्मल तस्वीर अभी तक इन कविताओं में पूरी तरह से उभरकर नहीं आ पाई है, यह एक विचारणीय बिंदु है। किंतु, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि मौजूदा दौर में स्थानीय रचनाकारों के साहित्यिक हस्तक्षेप से शेष भारत में पूर्वोत्तर के प्रति लोगों का नजरिया धीरे-धीरे बदल रहा है। इस धारणा को और अधिक मजबूती प्रदान करने के लिए हमें हिंदी पाठ्यक्रमों में स्वतंत्र रूप से 'पूर्वोत्तर का हिंदी साहित्य' विषयक पाठ्यक्रम लागू करने की आवश्यकता है। यद्यपि पूर्वोत्तर भारत में स्थानीय रचनाकारों द्वारा लेखन बहुत कम हुआ है, किंतु यह लेखन प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के स्तर हमारे लिए अधिक महत्वपूर्ण है। पूर्वोत्तर भारत में स्थानीय भाषाओं में लिखे जा रहे साहित्य को हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से विस्तारित करने की जरूरत है, ताकि साहित्य के माध्यम से लोगों के भीतर उत्तर पूर्व के लोकवृत्त की समझ विकसित हो सके। इसके माध्यम से हम पूर्वोत्तर भारत की लुप्त हो रही भाषा एवं संस्कृति को कुछ हद तक संरक्षित कर सकेंगे। उत्तर पूर्व के रचनाकारों का लेखन मुख्यधारा में अभी पूरी तरह शामिल नहीं हो पाया है, इसकी खास तौर पर दो वजहें हैं। पहला, साहित्य जगत की चर्चित पत्र-पत्रिकाओं में यहाँ के रचनाकारों को प्रमुखता से स्थान नहीं मिल पाया है, दूसरा स्थानीय रचनाकारों तक बड़े प्रकाशकों की पहुँच का न होना। उत्तर पूर्व की रचनाशीलता को विस्तारित करने हेतु हमें उक्त दोनों समस्याओं पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। उल्लेखनीय है, पूर्वोत्तर भारत के स्थानीय रचनाकारों ने हिंदी में लिखना अभी आरंभ किया है। आरंभिक दौर का यह सशक्त स्वर हमें पूर्वोत्तर में हिंदी साहित्य के विकास की व्यापक संभावनाओं और उम्मीदों के प्रति आश्वस्त करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

आओ, तेमसुला. (2012). *तट पर प्रतीक्षा.*(अनु. श्रुति एवं माधवेंन्द्र). नई दिल्ली: साहित्य अकादमी.

अरविंदाक्षन, ए. (2018). *समकालीन हिंदी कविता.* नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.

टेटे, वंदना. (2013). *आदिवासी साहित्य परंपरा एवं प्रयोजन.* झारखंड: प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन.

श्रीवास्तव, परमानंद. (1999). *कविता का अर्थात.* हरियाणा: आधार प्रकाशन.

बीनी, जमुना. (2018). *जब आदिवासी गाता है.* नई दिल्ली: परिंदे प्रकाशन.

इरिंग, आइनाम. (2023). *मीत.* नई दिल्ली: पुस्तकनामा प्रकाशन.

बरुआ, जोनाली. (2023). *अरण्य रोदन*. लखनऊ: श्री नर्मदा प्रकाशन.

तुलसी. (2023). रजस्वला शहर. सिलीगुड़ी: बुक आंट प्रकाशन.

ताबिंग, तुनुंग. (2023). *गोमpi गोमुk*. झारखंड: प्यारा केरकट्टा फाउंडेशन.

के. पी., प्रमीला. (2011). *स्त्री अस्मिता और समकालीन कविता*. नई दिल्ली: समसामयिक बुक्स.

सिंह, नामवर. (2011). *कविता की जमीन और जमीन की कविता* (संपा. आशीष त्रिपाठी). नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

कमल, अरुण. (1999). *कविता और समय*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

वनजा, के. (2020). *साहित्य का पारिस्थितिकी दर्शन*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

भंडारी, राजेन्द्र. (2021). *छोटी-छोटी खुशियाँ*. (अनुवादक: सुवास दीपक). लखनऊ: रश्मि प्रकाशन.

नारायण, बद्री. (2010). *लोक संस्कृति और इतिहास*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.

श्रीवास्तव, परमानंद. (2004). *कविता का उत्तर जीवन*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

श्रोत्रिय, प्रभाकर. (1990). *कविता की तीसरी आँख*. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस.

सिंह, नामवर. (2012). *कविता के नए प्रतिमान*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

पाठक, सुप्रिया. (2022). *स्त्री एवं प्रकृति पर्यावरणीय स्त्रीवाद के आयाम*. जयपुर: प्राकृत भाषा अकादमी.

त्रिपाठी, अरविंद. (2004). *कवियों की पृथ्वी*. हरियाणा: आधार प्रकाशन.

कृष्ण, कुमार. (2004). *समकालीन कविता का बीजगणित*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

श्रीवास्तव, परमानंद. (2004). *कविता का उत्तर जीवन*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.

वाजपेयी, अशोक (संपा.). (1992) *कविता का जनपद*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.

श्रीवास्तव, परमानंद. (1988). *शब्द और मनुष्य*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

त्रिपाठी, प्रदीप (संपा.). *कंचनजंघा पत्रिका*. सिक्किम

बेलिंस्की, हर्जन, चेर्नीशेव्स्की एवं दोब्रोल्युबोव. *दर्शन साहित्य और आलोचना*. (अनु: नरोत्तम नागर) लखनऊ: परिकल्पना प्रकाशन.